THE ECONOMIC TIMES

*Date: 24-07-25*

# Ease of Moving Places For the Indian Tourist

**Stronger Indian passport with the right push**

**ET Editorials**

The Indian passport gained the most strength in the last six months, according to the latest Henley Passport Index, which lists countries by the number of destinations holders can travel to without needing to obtain a prior visa. Gratifying as the development is, India now ranks 77 -up from 85-and has quite a way to go to make it into the top 10 list. Typically, acquiring a visa becomes easier with rising per-capita income, explaining the strength of passports issued by G7 countries. By this yardstick, India remains a middle-income country that imposes 'costs' on outbound travel. Yet, the next wave of global travel is expected to be led by Indians, and it would be in the interest of popular destinations to make themselves more welcoming to the Indian tourist. A degree of reciprocity is involved with India having to make the visa process easier for inbound travellers.

Indians seem to favour destinations in Asia because of improving connectivity, favourable exchange rates and easier visa requirements. Efforts to strengthen the Indian passport within the Asia-Pacific region could accelerate the nation's climb in global rankings. India has a large untapped potential for inbound convention tourism that should benefit from improving connectivity and an easy visa regime. Saturation of this category in mature Western markets, and the geographical diversity of India's offerings against Asian competitors, should help the country meet its target of doubling its share of the global MICE (meetings, incentives, conferences and exhibitions) tourism market. The expanding footprints of the Indian aviation and hospitality industries are facilitators.

Beyond its rising economic power, India projects a fairly open foreign policy that contributes to the strength of its passport. The country is also the biggest supplier of migrant workers across the world. It is also the biggest recipient of remittances. This adds to the need for India to place special emphasis on facilitating foreign travel.

---

THE HINDU

*Date: 24-07-25*

# Danger of thought

## Maharashtra's public security Bill endangers India as an open society

### Editorials

The Maharashtra Special Public Security (MSPS) Bill, 2024 follows the disturbing pattern of executive overreach in the name of security. Existing laws are often misused against political opponents and critics of the ruling party, including commentators. Charges are often vague and sweeping, and the process itself becomes the punishment in many of these cases. Given this pattern, the move by Maharashtra's Mahayuti government led by the BJP to create an entire law to criminalise a certain kind of thought portends danger to freedom and democracy. Chief Minister Devendra Fadnavis has said that the new law would only target those who try to undermine the constitutional order, but the pos- sibility -- indeed the probability - of its misuse is apparent. The State says that it is seeking to prevent Maoists from brainwashing youth, professionals, and civil servants through front organisations. As in the proposed law, which is now awaiting the assent of the Governor before coming into force, the State government can declare any suspect "organisation" as an "unlawful organisation". Offences under the proposed law include membership of such organisations, fundraising on their behalf, managing or assisting them, and committing unlawful activities.

The Bill's focus is on people and organisations that act as a front for Maoists, and what is unlawful is so broadly defined that anyone can be its target. Among other things, according to the Bill, "unlawful' is "any action taken by an individual or organization whether by committing an act or by words either spoken or written or by sign or by visible representation or otherwise, which constitute a danger or menace to public order, peace and tranquility". Offences are cognisable and the accused can be arrested without a warrant. Punishment includes jail terms of two years to seven years, along with fines ranging from 2 lakh to ₹5 lakh. The State argues that Chhattisgarh, Telangana, Andhra Pradesh and Odisha have enacted Public Security Acts and banned 48 Naxal frontal or ganisations. The Opposition parties offered feeble resistance to the Bill and raised some broad concerns regarding its misuse but it was passed in the Assembly through a voice vote. As an afterthought, the Congress and the Shiv Sena (UBT) protested on the floor when it was taken up in the Legislative Council. The Bill had gone through a long deliberative process, but as it turns out, all parties appeared to be in agreement, barring the lone CPI (M) MLA who protested against it on the floor of the Assembly. The idea that thought and speech, howsoever unpa- latable they might be to the ruling establishment, should be policed poses a grave danger for India as an open society.

---

दैनिक भास्कर

***Date: 24-07-25***

# कृषि उत्पादन को दोगुना करना हमारे हित में होगा

**संपादकीय**

आजादी की शुरुआत के दो दशकों में भारत अनाज के क्षेत्र में आत्मनिर्भर नहीं था। तब नोबेल विजेता नार्मन बोरलॉग ने भारत रत्न एमएस स्वामीनाथन के साथ बौनी प्रजाति विकसित कर देश की कृषि की काया पलट दी थी। आज भारत में इफरात अनाज है। लेकिन यूएसएड बंद करने के ट्रम्प के फैसले के बाद इस वैज्ञानिक के मैक्सिको स्थित संस्थान ने भारत सरकार और निजी सेक्टर से आर्थिक मदद की अपील की है। आज भी भारत के कृषि शोध के जेनेटिक पक्ष में इस संस्थान का बड़ा योगदान रहता है। संस्थान की उप- संस्था और आईसीएमआर के साझा प्रयास भारत की कृषि में बड़ा योगदान दे रहे हैं। संस्था के 22.10 करोड़ डॉलर के बजट का लगभग 37% अमेरिका देता था, जबकि 20% गेट्स फाउंडेशन | आज भी इस संस्था ने पर्यावरण असंतुलन से बढ़ने वाले तापमान के मद्देनजर जेनेटिक बदलाव के सहारे दक्षिण एशिया में गेहूं की उपज को 80 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक पहुंचाया है। पर्यावरण असंतुलन से तापमान दो डिग्री बढ़ सकता है, जिससे उत्पादन काफी कम होगा। आज भारत में गेहूं का औसत उत्पादन 37 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है, जो चीन और अमेरिका के मुकाबले लगभग आधा है। संस्थान के शोध के जरिए गेहूं और अन्य अनाजों में जेनेटिक बदलाव से उत्पादन दूना करना भारत के दूरगामी ही नहीं, तात्कालिक हित में भी होगा। भारत उन देशों में है, जिनमें नार्मन - स्वामीनाथन के प्रयासों से कृषि क्रांति आई। उनकी संस्था को मदद करना हमारे हित में होगा ।

---

***Date: 24-07-25***

# आंकड़ों की बाजीगरी से छुप नहीं सकती है वास्तविकता

**अभय कुमार दुबे, ( अम्बेडकर विवि, दिल्ली में प्रोफेसर )**

राजनीति में अर्धसत्यों का इस्तेमाल करके कई संकटों का कुशलता से प्रबंधन किया जाता है। एकतरफा आंकड़ों, स्पिन- डॉक्टरी, नैरेटिव के जरिए आज के प्रबंधन - विशेषज्ञ राजनीतिक नुकसान को न्यूनतम कर देने में सक्षम हैं।

लेकिन एक संकट ऐसा है, जिसका प्रभाव इन हथकंडों से कम नहीं होता वह है आर्थिक संकट मुद्रास्फीति के आंकड़ों को कितना भी कम दिखाते रहिए, मंहगाई बढ़ी है तो राजनीतिक नाराजगी को बढ़ाकर मानेगी। बढ़ी बेरोजगारी का नतीजा युवाओं और शिक्षितों के असंतोष में निकलेगा ही, भले ही बेरोजगारों की संख्या को कितना भी कम क्यों न दिखा दिया जाए। जीडीपी के आंकड़ों को आकर्षक बनाया जा सकता है, लेकिन उनके आधार पर निजी क्षेत्र को अर्थव्यवस्था में निवेश के लिए राजी नहीं किया जा सकता । मेक इन इंडिया के कितने भी दावे

क्यों न किए जाएं, उपभोक्ताओं को बाजार में यह देखने से कोई नहीं रोक सकता कि वहां चीन का माल भरा हुआ है।

सरकार अच्छी तरह से जानती है कि प्रति व्यक्ति आमदनी के लिहाज से हमारा देश एक कमतर आय वर्ग वाले देशों में आता है। अगर ऊपर के दस-बारह फीसदी लोगों को छोड़ दें तो बाकी लोग किसी न किसी स्तर की गरीबी और विपन्नता का ही सामना कर रहे हैं। इसके बावजूद सरकार दावा करती रहती है कि देश में गरीबी घट रही है, या आर्थिक विषमता में कमी आ रही है। लेकिन जैसे ही इन आंकड़ों की जांच की जाती है, ये दावे अपना मुंह छिपाकर कोने में चले जाते हैं।

2024 के चुनाव से कुछ पहले नीति आयोग ने गरीबी कम करने का दावा किया था। इसका उल्लेख प्रधानमंत्री ने भी अपने भाषण में किया। लेकिन यह पता लगने में देर नहीं लगी कि वह आयोग का न होकर निजी स्तर पर लिखकर आयोग को पेश किए गए एक लेख का दावा था । जाहिर है कि आयोग ने इस दावे की आधिकारिक पुष्टि कभी नहीं की। इसी महीने विश्व बैंक के हवाले से सरकार की तरफ से एक नया दावा यह किया गया कि भारत दुनिया में सबसे कम विषमता वाला चौथा देश बन गया है। आर्थिक मामलों के जानकारों ने इस दावे की भी कलई खोल दी है।

हम जानते हैं कि विश्व बैंक हो या आईएमएफ, ये संगठन किसी देश की अर्थव्यवस्था के आंकड़े स्वतंत्र रूप से जमा नहीं करते। वे उन्हीं आंकड़ों के आधार पर अनुमान लगाते हैं, जो सरकारें उन्हें मुहैया कराती हैं। इसी महीने में विश्व बैंक के पॉवर्टी एंड इक्विटी ब्रीफ में बताया गया कि भारत का 2011-12 में उपभोग -आधारित गिनी इंडेक्स 28.8 था, जो 2022-23 में घटकर 25.5 रह गया। बैंक के इस अवलोकन को पकड़कर सरकार ने तुरंत भारत को विषमता घटाने वाली दुनिया की चौथी अर्थव्यवस्था घोषित कर दिया। चालाकी यह दिखाई गई कि विश्व बैंक द्वारा कही गई पूरी बात छिपा ली गई। बैंक ने यह भी कहा था कि संभवतः उसने विषमता का कम अनुमान लगाया है, क्योंकि उसके पास आंकड़े सीमित थे। इसी के बाद बैंक ने कहा कि विश्व - विषमता डेटाबेस दिखाता है कि आमदनी संबंधी विषमता का गिनी इंडेक्स 2004 के 52 से बढ़कर 2023 में 62 हो गया है। जाहिर है कि सरकार ने बैंक को आमदनी संबंधी आंकड़े नहीं, या बहुत कम दिए। उपभोग संबंधी आंकड़े ही दिए थे

यहां सरकारी नीयत उपभोग संबंधी आंकड़ों का अपने पक्ष में दोहन करने की थी। पहली नजर में ही ये आंकड़े भारत की सच्चाई से परे साबित हो जाते हैं। क्या किसी को यकीन होगा कि भारत के सबसे अमीर 5% लोग सालभर में प्रति व्यक्ति ढाई लाख रुपए के आसपास (20,824 रु. प्रति माह) ही खर्च करते हैं?

असलियत तो यह है कि ये लोग रेस्तरां में खाने-पीने, डेस्टिनेशन वेडिंग करने, विदेशी और भारतीय रिजॉर्ट्स में सैर-सपाटा करने, डिजाइनर कपड़े खरीदने, महंगी घड़ियां और इलेक्ट्रॉनिक सामान आदि खरीदने में इसकी कई

गुना रकम खर्च करते हैं। इस तरह के आंकड़ों से जो तुलनात्मक गिनी इंडेक्स बनती है, वह हमारी आर्थिक असलियत की नुमाइंदगी नहीं करती।

आर्थिक विषमता की चर्चा करते समय हमें हमेशा आमदनी और सम्पत्ति संबंधी स्वामित्व के आंकड़ों पर गौर करना चाहिए। हकीकत यह है कि देश के ऊपरी 10% लोगों का आमदनी में हिस्सा 57.7% है। नीचे के 50% लोगों की हिस्सेदारी 14.6% ही है। सम्पत्ति के लिहाज से ऊपर के 10% लोग 65% सम्पत्तियों के स्वामी हैं और नीचे के 50% लोग महज 6.4% सम्पत्तियां रखते हैं। यानी आमदनी से भी अधिक विषमता सम्पत्तियों के मामले में है। बीच के 30% लोग ही ऐसे हैं, जो रोजी-रोटी चलाने की शर्तों को पूरा कर पाते हैं, लेकिन उनकी आमदनी भी इतनी नहीं होती कि वे मनचाही चीजें खरीदने का साहस कर सकें।

---

दैनिक जागरण

***Date: 24-07-25***

# स्वच्छ ऊर्जा में विश्व को राह दिखाता भारत

**आदित्य सिन्हा, ( लेखक लोक नीति विश्लेषक हैं )**

जलवायु परिवर्तन की निरंतर विकराल होती चुनौती के बीच स्वच्छ ऊर्जा की और कदम बढ़ाने को लेकर कोई दुविधा नहीं। इसके बावजूद यह चर्चा जीवाश्म ईंधन और न्यूएबल एनर्जी यानी नवीकरणीय ऊर्जा को लेकर अनावश्यक द्वंद्वों में फंसी है। इसमें ऊर्जा परिदृश्य पर संक्रमण की जटिलता को अनदेखा किया जा रहा है और यह स्थिति ग्लोबल साउथ यानी विकासशील या उभरती हुई अर्थव्यवस्था में अधिक देखने को मिल रही है। आवश्यकता जीवाश्म ईंधनों को पूरी तरह से त्यागने की नहीं, बल्कि उन पर निर्भरता घटाने की एक संतुलित नीति एवं गैर- जीवाश्म ईंधनों में रणनीतिक निवेश बढ़ाने की दिशा में आगे बढ़ने की है। सौर, पवन, जल, परमाणु और जैव ऊर्जा में निवेश इस रणनीति के मूल में होना चाहिए। उल्लेखनीय है कि बीते एक दशक में सौर एवं पवन ऊर्जा की लागत 80 प्रतिशत से भी अधिक घट गई है। इसके चलते कई क्षेत्रों में सौर पवन ऊर्जा की लागत कोयले और गैस से बनने वाली बिजली से भी किफायती हो गई है। नवीकरणीय ऊर्जा कीमतों में स्थायित्व प्रदान करने के साथ ही ऊर्जा स्वतंत्रता भी सुनिश्चित करती है। एक बार इंस्टाल होने के बाद उसमें लागत लगभग नगण्य रह जाती है।

ये कुछ ऐसे लाभ हैं जिनकी जीवाश्म ईंधन कभी बराबरी कर ही नहीं सकते। ऐसी क्षमताओं से भू-राजनीतिक गतिरोधों से भी सहजतापूर्वक निपटा जा सकता है, क्योंकि ऊर्जा समृद्ध क्षेत्रों में तनाव जाती है। रूस-यूक्रेन युद्ध इसका बड़ा भड़कने से आपूर्ति श्रृंखला प्रभावित हो उदाहरण रहा। स्वच्छ घरेलू ऊर्जा में निवेश करने वाले देश ऐसी अस्थिरता से बचे रह सकते हैं। जलवायु परिवर्तन की चुनौती का सामना करने के लिए नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों को अपनाना इसलिए और अनिवार्य हो गया है कि वैश्विक ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में अकेले जीवाश्म ईंधनों की हिस्सेदारी करीब तीन-चौथाई है। स्पष्ट है कि नवीकरणीय ऊर्जा पर दांव लगाए बिना कार्बन से पीछा छुड़ाना मुश्किल होगा।

इतने व्यापक लाभ के बावजूद यह एक तथ्य है कि विकसित देश भी स्वच्छ ऊर्जा के अपने लक्ष्यों की पूर्ति नहीं कर पाए हैं। शुरुआती स्तर पर बढ़त हासिल करने के बाद यूरोपीय संघ के कदम भी इस मोर्चे पर ठिठक गए। इसमें राजनीतिक दबाव, कीमतों को लेकर चिंता और कार्बन नियमनों को लेकर बढ़ते विरोध जैसे पहलू प्रमुख रूप से जिम्मेदार हैं। अमेरिका में अभी भी 60 प्रतिशत से अधिक बिजली जीवाश्म ईंधनों से पैदा हो रही हैं। इसका नतीजा यही है कि जो देश जलवायु संकट बढ़ाने के लिए सबसे कम जिम्मेदार हैं, उन पर ही स्वच्छ ऊर्जा की दिशा में तेजी से कदम बढ़ाने का दबाव है और वह भी उन्हें न्यूनतम समर्थन दिए बिना इससे विकासशील देशों के लिए असंभव सी स्थिति बन जाती है। इसे देखते हुए भारत, इंडोनेशिया और ब्राजील सहित अफ्रीका के एक अच्छे बड़े हिस्से के समक्ष दोहरी चुनौती दस्तक देती है। एक और उन्हें कार्बन फुटप्रिंट घटाना है तो दूसरी और इन्फ्रास्ट्रक्चर तैयार करना, लोगों को रोजगार दिलाना और करोड़ों लोगों को अभी भी गरीबी के दायरे से बाहर निकालने के लिए अपनी आर्थिकी का दायरा भी बढ़ाना है। स्वाभाविक है कि इन देशों में उद्योगीकरण, शहरीकरण, जनसंख्या वृद्धि एवं जीवन स्तर में सुधार से ऊर्जा की मांग और बढ़ेगी ही।

इस परिदृश्य में भारत की उपलब्धियां उल्लेखनीय हैं। इस साल जून तक देश में कुल स्थापित बिजली क्षमता में 50.08 प्रतिशत हिस्सेदारी नवीकरणीय ऊर्जा की हो गई। यह पड़ाव पेरिस समझौते के अंतर्गत नेशनल डिटरमाइंड कांट्रिब्यूशन यानी एनडीसी की प्रतिबद्धता के लिए निर्धारित लक्ष्य से पांच साल पहले ही पार हो गया। इसमें सौर, पवन, पनबिजली, जैव एवं परमाणु ऊर्जा शामिल हैं। कुल 484.82 गीगावाट स्थापित क्षमता में इन नवीकरणीय स्रोतों की हिस्सेदारी 242.78 गीगावाट हो गई। यह किसी भी विकासशील देश के लिए बहुत दुर्लभ मामला है, जिसने अपने लिए निर्धारित लक्ष्य से पहले ही ऐसी सफलता प्राप्त की। इसमें नीतियों की अहम भूमिका रही है। जहां पीएम- कुसुम और पीएम सूर्य घर जैसी योजनाओं ने सौर ऊर्जा को अपनाना सहज बनाया है, वहीं सोलर पार्क और विंड कारिडोर स्वच्छ ऊर्जा में निवेश को लुभाने में सहायक बने हैं। जैव ऊर्जा के विस्तार ने ग्रामीण आर्थिकी को संबल दिया है। यही कारण है कि जी-20 देशों में भारत न्यूनतम प्रति व्यक्ति उत्सर्जन वाला देश बन हुआ, जिसने स्वच्छ ऊर्जा के मोर्चे पर ऊँची छलांग लगाई है। भारत की रणनीति भी बहुत व्यावहारिक है। वह जीवाश्म ईंधनों से एकाएक पीछा नहीं छुड़ा रहा और कोयला एवं गैस आधारित संयंत्र अभी भी प्रमुख ऊर्जा आपूर्तिकर्ता बने हुए हैं। चूंकि भारत ने 2030 तक गैर- जीवाश्म क्षमता को 500 गीगावाट तक

ले जाने और 2070 तक शून्य कार्बन उत्सर्जन का लक्ष्य निर्धारित किया है तो उसे ग्रिड आधुनिकीकरण, ऊर्जा भंडारण, क्लीन टेक मैटीरियल रिसाइक्लिंग और ग्रीन हाइड्रोजन जैसे आधुनिक ईंधनों में निवेश बढ़ाना होगा।

चीन भी ऐसी क्षमताओं को प्रदर्शित कर रहा है। वह सोलर पैनल, विंड टरबाइन और इलेक्ट्रिक वाहनों का सबसे बड़ा उत्पादक बन गया है। फिर भी इसे अनदेखा नहीं किया जा सकता कि वह दुनिया का सबसे बड़ा उत्सर्जक है, जिसकी आधी से अधिक बिजली अभी भी कोयले से बनती है। नवीकरणीय ऊर्जा का विस्तार जरूरी है, पर यह अपने आप में पर्याप्त नहीं और जीवाश्म ईंधनों के निरंतर होते विस्तार में उत्सर्जन भी सतत रूप से बढ़ता रहेगा । ऐसे स्थिति में सभी के लिए कोई एक ढांचा कारगर साबित नहीं हो सकता । ग्लोबल साउथ को समझना होगा कि जीवाश्म ईंधनों से रातोंरात मुक्ति नहीं पाई जा सकती, लेकिन उन्हें नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों पर संसाधन बढ़ाने होंगे।

नवीकरणीय ऊर्जा पर अंतरराष्ट्रीय नीति में भी बदलाव जरूरी है। इसके लिए वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराने से लेकर तकनीकी हस्तांतरण की नीति न केवल उदार बनानी होगी, बल्कि कई जटिल पहलुओं का भी ध्यान रखना होगा। भारत की सफलता इस मामले में उम्मीद जगाती है। यदि भारत यह लक्ष्य हासिल कर सकता है तो दुनिया भी उस दिशा में आगे बढ़ सकती है।

---

बिज़नेस स्टैंडर्ड

***Date: 24-07-25***

# बढ़ता जल स्तर और अचल संपत्ति क्षेत्र

**अजय शाह, ( लेखक एक्सकेडी आर फोरम में शोधकर्ता हैं )**

कार्बन उत्सर्जन कम करने को लेकर दुनिया के नीतिगत काम में धीमापन आया है। खासकर अमेरिका में 2016 में डॉनल्ड ट्रंप के पहले कार्यकाल के समय से और फिर 2022 में यूक्रेन पर रूस के आक्रमण के बाद यह हुआ। अब उत्सर्जन को लेकर परिदृश्य और भी चुनौतीपूर्ण है। हम सभी को अब मध्यम से लेकर उच्च उत्सर्जन परिदृश्य के लिए योजना तैयार करनी होगी।

मुंबई के लिए इसका क्या अर्थ है? उच्च उत्सर्जन वाले परिदृश्य में, जैसा कि अंतरराष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन समिति ने अनुमान लगाया है, मुंबई का समुद्री जलस्तर वर्ष 2050 तक 25 सेंटीमीटर बढ़ जाएगा। इसकी वजह होगी, समुद्री जल का तापमान बढ़ना और गर्म होती दुनिया में बर्फ का तेजी से पिघलना। इसके अलावा एक

स्थानीय भूवैज्ञानिक घटना भी मुंबई को प्रभावित करती है और वह है जमीन की सतह का धीरे-धीरे नीचे धंसना । मुंबई हर वर्ष करीब दो मिलीमीटर धंस रहा है। इस भूमि धंसाव की कई वजह हैं। मसलन भूजल का ज्यादा दोहन, गाद का एकत्रित होना, शहरी निर्माण का दबाव आदि। इसके चलते भी वर्ष 2050 तक जल स्तर 5 सेंटीमीटर बढ़ सकता है। यानी कुल मिलाकर देखें तो मुंबई का समुद्री जल स्तर 30 सेंटीमीटर यानी करीब 12 इंच तक बढ़ सकता है। जब हम वर्ष 2050 से आगे देखते हैं तो उच्च उत्सर्जन परिदृश्य मध्यम परिदृश्य से ज्यादा खराब नजर आते हैं। ऐसे में हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि 2050 तक जल स्तर करीब 12 इंच बढ़ेगा और वर्ष 2100 आते-आते हालात बहुत बुरे हो जाएंगे।

एक स्विमिंग पूल को उदाहरण लेकर हम आसानी से यह कल्पना कर सकते हैं कि जल स्तर में 12 इंच के इजाफे का क्या मतलब होता है। हम कल्पना कर सकते हैं कि हम अक्सा बीच पर खड़े हैं पहले हमारे घुटनों तक आने वाला पानी हमारी कमर तक पहुंच रहा है।

परंतु समुद्र कोई स्विमिंग पूल नहीं है। जब औसत समुद्री जल स्तर में मामूली बढ़ोतरी होती है तो भी इसका शहरी पर्यावरण पर बहुत गहरा असर होता है। तटीय इलाकों में बाद आने की घटनाएं बढ़ जाती हैं, खासतौर पर समुद्री ज्वार आने पर या समुद्री तूफान के समय ऐसा होता है। इस समय जिन इलाकों में बाद आती है वहां ऐसी घटनाओं में और अधिक इजाफा हो जाएगा। पानी की निकासी व्यवस्था और भी खराब हो जाएगी। मौजूदा शहरी जल निकासी प्रणाली मोटे तौर पर निकासी के लिए गुरुत्व दबाव पर काम करती है और उस समय यह भी ठीक से काम नहीं करेगी। इससे वर्षा जल और नदी जल की निकासी प्रभावित होती । उस स्थिति में बरसात के बाद जल जमाव की घटनाएं बढ़ेंगी। आदर्श स्थिति में एक बेहतर शहरी प्रशासन में पर्याप्त पंपिंग स्टेशन के निर्माण और संचालन पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

समुद्री जल स्तर में इजाफा परिवहन नेटवर्क मसलन सड़क, रेलवे, मेट्रो लाइन आदि को प्रभावित करेगा। बिजली की केबल, पानी की आपूर्ति, सीवेज प्रणाली आदि सभी प्रभावित होंगे। बार- बार जल भराव और खारे पानी के संपर्क में आने से परिसंपत्तियों की गुणवत्ता तेजी से बिगड़ेगी, उनके रखरखाव की लागत बढ़ेगी। निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के लोगों को संसाधन जुटाना और प्रबंधन का काम तेज करना होगा ताकि संपत्तियों के मूल्यहास और भयावह परिस्थितियों से निपटा जा सके। भारत के यथार्थवादी हालात की बात करें तो सार्वजनिक और निजी कार्रवाइयों में खामी रहेगी। ऐसे में पंपिंग स्टेशन अपर्याप्त साबित हो सकते हैं और संपत्तियों के परिचालन और रखरखाव में समस्या आ सकती है।

वैश्विक तापवृद्धि के बारे में अक्सर यह माना जाता है कि यह भविष्य में घटित होने वाली कोई घटना है। यह तर्क हमें एक खास भारतीय परिवेश यानी मुंबई पर और एक ऐसी तारीख पर स्थिर करता है जो सामान्य इंसानी योजना अवधि यानी 25 वर्ष के भीतर फिट बैठती है। 75 साल से कम आयु के किसी भी व्यक्ति के लिए यह परिदृश्य मायने रखता है।

इन भौतिक जलवायु जोखिमों को वित्तीय क्षेत्र की निर्णय प्रक्रिया में शामिल करके ही सटीक बाजार मूल्य का निर्धारण किया जा सकता है। ऐसे में मुंबई में निजी संपत्ति में निवेश करने के इच्छुक लोगों और कंपनियों की बात करें तो अगर वे दीर्घकालिक इस्तेमाल के लिए ऐसा करना चाहते हैं तो 2050 तक समुद्री जल स्तर में 30 सेंटीमीटर के प्रभावी इजाफे का आकलन भविष्य की उपयोगिता और परिसंपत्ति मूल्यांकन को लेकर सटीक गैर वित्तीय जानकारी मुहैया कराता है।

अचल संपत्ति में निवेश करने वालों को तीन तरह की चिंताओं पर विचार करना होगा। भविष्य की बाद और बढ़ी हुई परिचालन लागत से निवेशकों और असल उपभोक्ताओं की मांग में कमी आएगी। इससे संवेदनशील क्षेत्रों की परिसंपत्ति कीमतों में गिरावट की स्थिति बनेगी। परिसंपत्ति स्वामित्व की लागत बीमा प्रीमियम बढ़ने के कारण बढ़ेगी। बाढ़ से बचाव के लिए रखरखाव व्यय में इजाफे और संभावित ढांचागत मरम्मत का भी ध्यान रखना होगा जो पानी से होने वाली क्षति से बचाव के लिए आवश्यक होगा। लोगों में जागरूकता बढ़ने के साथ ही जलवायु जोखिम वाली परिसंपत्तियों का बाजार कमजोर होगा । ये समस्याएं वित्तीय कंपनियों की विचार प्रक्रिया पर असर डालेंगी। मुंबई का अचल संपत्ति बाजार ही 50,000 से एक लाख करोड़ डॉलर का है और इस पर विपरीत प्रभाव परिसंपत्ति कीमतों में गिरावट के रूप में नजर आएगा।

भारतीय रिजर्व बैंक इससे जुड़े सवालों के जवाब तलाशने की कोशिश कर रहा है। वह जल्दी ही बैंकों और वित्तीय संस्थानों के लिए जलवायु परिवर्तन जोखिम के प्रबंधन और खुलासे से संबंधित रिपोर्ट जारी कर सकता है। इससे ऋण पोर्टफोलियो के भीतर जलवायु संबंधित जोखिम और उत्सर्जन नियंत्रण रणनीतियों, लक्ष्य तथा दबाव परीक्षण को लेकर नियमित खुलासे करने होंगे। वित्तीय कंपनियों को इससे संबंधित क्षमता विकसित करने में काफी समय लगेगा और अनिवार्य खुलासे के पहले तीन साल की तैयारी का समय दिया जाएगा।

कई भारतीय वित्तीय कंपनियों की रणनीतिक उदासीनता को देखते हुए ऐसा माना जा सकता है कि नए प्रकार के खुलासे पहले केवल रिजर्व बैंक के नियमों के अनुपालन को ही दर्शाएंगे और वे इसके लिए सलाहकारों तथा सॉफ्टवेयर विक्रेताओं को ठेका देंगी। विभिन्न कंपनियों की निवेश रणनीतियों और व्यवहार को नया स्वरूप देने के लिए इस डेटा का अधिक गहराई से उपयोग करने के लिए नए ज्ञान तैयार करने की आवश्यकता होगी।

जलवायु परिवर्तन को समझने तथा इसे लेकर प्रतिक्रिया देने की बात करें तो बेहतर कंपनियों की प्रदर्शन संबंधी बढ़त तय करने में यही मुख्य कारक होगा। ऐसी रिपोर्टिंग से कई स्तरों पर प्रोत्साहन को नया स्वरूप दिया जा सकेगा। वित्तीय कंपनियों के निवेशक बेहतर तैयारियों के पक्ष में अपनी प्राथमिकता को नए सिरे से निर्धारित कर सकेंगे। वित्तीय कंपनियों को जलवायु प्रतिरोधी परिसंपत्तियों के पक्ष में बाजार आधारित प्रोत्साहन मिलेंगे। अनुमानित जलविज्ञान परिवर्तनों के प्रति लचीलापन प्रदर्शित करने वाली संपत्तियों पर प्रीमियम की संभावना होगी, जबकि चिह्नित कमजोरियों वाली संपत्तियों के बाजार मूल्य में कमी आएगी। इसी प्रकार जलवायु परिवर्तन को संपूर्ण वित्तीय प्रणाली के वित्तीय विनियमन में गहराई से शामिल किया जाना चाहिए, जिसमें नियामक और कर्मचारी भविष्य निधि संगठन भी शामिल हों।

***Date: 24-07-25***

# शहरी विकास की बदलनी होगी रणनीति

**अमित कपूर, ( लेखक इंस्टीट्यूट फॉर कंपेटटिवनेस के चेयरपर्सन हैं )**

**मीनाक्षी अजित**

शहरी अर्थव्यवस्थाओं में सामूहिकता बहुत मायने रखती है। जब कंपनियां, कर्मचारी और योजनाकार सब एक जगह होते हैं, तो वे साझा बुनियादी ढांचे, संयुक्त श्रम और नवाचार का लाभ उठाते हैं। अल्फ्रेड मार्शल से लेकर एडवर्ड ग्लेसर तक तमाम अर्थशास्त्रियों ने एक ही जगह उपलब्ध सभी सुविधाओं वाले ऐसे केंद्रों की सराहना करते हुए इन्हें उत्पादकता एवं विकास का इंजन बताया है। पिछले कुछ समय से भारत के कई बड़े शहरों ने अपने यहां ऐसी ही एकीकृत सुविधाओं, रोजगार ढांचे को विकसित करने पर जोर दिया है।

बेंगलुरु ने तकनीकी कंपनियों और इंजीनियरों को आकर्षित किया है, तो मुंबई ने अपने कुछ वर्ग किलोमीटर के दायरे में ही वित्त, मीडिया और महत्त्वाकांक्षी लोगों को केंद्रित किया है। इसी तरह दिल्ली ने भी राजनीति, अफसरशाही और इन सबके बीच रहन-सहन को आसान बनाने वाली हर चीज को एक साथ लाकर विकास का अनूठा गुलदस्ता बनाया है।

सैद्धांतिक रूप में एकीकृत शहरी व्यवस्था से उत्पादकता में वृद्धि होनी चाहिए थी और शायद कुछ समय के लिए ऐसा हुआ भी। लेकिन अब जबकि बेंगलूरु अत्यधिक यातायात के दबाव से जूझ रहा है, मुंबई में आवासीय संकट है और दिल्ली का दम धुएं (प्रदूषण) से घुट रहा है, तो सवाल उठता है कि विकास का यह रास्ता कितना कारगर है ? देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में शहरों का योगदान 60 फीसदी से अधिक है और वर्ष 2030 तक इसके बढ़कर 70 फीसदी तक हो जाने का अनुमान है। दिल्ली, बेंगलूरु और मुंबई जैसे महानगरों में लगातार पूंजी निवेश हो रहा है और श्रमबल खिंचा चला रहा है। सरकार भी स्मार्ट सिटी, स्वच्छ ऊर्जा और हाई- स्पीड रेल जैसी सुविधाओं के साथ इन शहरों की गतिशीलता बढ़ाने का प्रयास कर रही है।

इनसे शहरी जीवन आसान जरूर लगता है, लेकिन हकीकत यह है कि बेंगलूरु की दिनचर्या हर रोज 190 किलोमीटर के दायरे में घूमती है। कर्नाटक में इंस्टीट्यूट फॉर सोशल ऐंड इकनॉमिक चेंज के अनुमान के मुताबिक यातायात जाम के कारण बेंगलूरु को अपने उत्पादक घंटों में कमी आने की वजह से 1,170 करोड़ रुपये का नुकसान होता है मेट्रो अभी पूरे शहर और इसके आसपास उभरते उपनगरों को कवर नहीं कर पाई है। कागजों में देश के रहने लायक सबसे अच्छे शहरों में शुमार पुणे ने पिछले एक दशक में अपनी हरियाली का एक तिहाई

हिस्सा खो दिया है। भुवनेश्वर और नागपुर लगातार बढ़ती गर्मी से परेशान हैं। इस वजह से इन दोनों शहरों में पहले ही अनौपचारिक कामगारों की उत्पादकता 10 से 13 फीसदी तक कम हो गई है।

असल बात यह है कि समूहीकरण केवल शहरों में अधिक से अधिक लोगों के बसने का नाम नहीं है। यह जीवन की गुणवत्ता के बारे में है। शहरी उत्पादकता तब बढ़ती है जब लोग आपस में सहयोग करते हैं। एक साथ घूमते-फिरते हैं और एक-दूसरे से सीखते हैं। लेकिन यदि शहर में काम के सिलसिले में हर रोज दो घंटे सफर करना पड़े, आवास पर ही आधी कमाई खर्च हो जाए और लू चलने से लोगों की रोज की कमाई पर ही संकट आ जाए तो सुविधाओं का केंद्रीकरण बेमानी हो जाता है।

नगर निकायों के कामकाज पर 2024 में किए गए एक शोध में पता चलता है कि एकीकृत विकास के लिए शहरों में कितनी कम या खराब सुविधाएं हैं। इस अध्ययन में शामिल 152 नगर पालिकाओं में से केवल 94 के पास ही अपनी विकास योजनाओं से संबंधित डेटा मिला। इनमें भी सिर्फ 59 ने अपने डेटा को जीआईएस यानी भौगोलिक सूचना प्रणाली के आधार पर अपडेट किया था। अध्ययन का हिस्सा रहे कुल शहरी निकायों में से केवल 37 के पास एक सक्रिय गतिशील योजना पाई गई और केवल 16 निकाय ही नगर नियोजन योजना के अंतर्गत कामकाज के पैमाने पर खरे उतरे। कुल 113 नगर पालिकाओं के पास ही योग्यता प्राप्त योजनाकार हैं। खंडित और असंगत योजना ढांचे के कारण शहरों की वह व्यवस्था कमजोर होती है जो व्यापक आबादी को अराजक के बजाय उत्पादक बनाने में मदद करती है।

देश अभी आंशिक सामूहीकरण प्रक्रिया से गुजर रहा है जहां कंपनियां और कुशल श्रमबल तो आ रहे हैं लेकिन वे कमजोर बुनियादी ढांचे और पर्यावरणीय समस्याओं से जूझ रहे हैं। अपनी आबादी को उत्पादक बनाने के लिए शहरों को अपनी क्षमताओं को समझना होगा। एशियाई विकास बैंक (एडीबी) के हालिया निष्कर्षो से यह स्पष्ट होता है कि जनसंख्या और उसके घनत्व के हिसाब से वेतन लचीलापन या प्रत्यास्थता भारतीय शहरों में 1 से 2 फीसदी ही है। यह अधिक विकसित देशों की शहरी अर्थव्यवस्थाओं के 4 से 6 फीसदी से काफी कम है। वेतन के लचीलेपन में यह अंतर न केवल शहरी बुनियादी ढांचे की कमी, बल्कि सम न्वित एवं भविष्योन्मुख रणनीतिक योजनाओं के गंभीर अभाव को भी दर्शाता है।

शहरों को ऐसी मजबूत डेटा प्रणाली विकसित करनी चाहिए जो अपनी सेवाओं से लेकर भू-उपयोग योजनाओं तक आम आदमी को लाभ पहुंचाने के उद्देश्य से तत्काल निर्णय लेने में मददगार साबित हो नियोजन प्रक्रियाओं को लचीला होना चाहिए जिससे जनसांख्यिकीय बदलावों, जलवायु जोखिमों और आर्थिक स्थिति परिवर्तन का पूर्वानुमान आसानी से लग सके। शहरों के विखंडित प्रशासन को दुरुस्त करना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। कई शहरों में आवास, परिवहन और पर्यावरण जैसे क्षेत्रों में क्षेत्राधिकार सीमाओं की गड़बड़ी के कारण समन्वित योजनाएं बनाने में दिक्कत पेश आती है। शहरों के विकास की योजनाएं ऐसी होनी चाहिए जिससे श्रम गतिशीलता को बल मिले और आर्थिक समावेश बढ़े। इससे यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि लोग न केवल शहरों में रहें, बल्कि वे सुविधाजनक आवाजाही करें और सार्थक रूप से नौकरियों, सेवाओं एवं नवाचार नेटवर्क से भी जुड़ें।

एशिया के अन्य शहरों में सिंगापुर का ही उदाहरण लें, जहां एकीकृत भू-उपयोग और परिवहन योजनाएं इस तरह डिजाइन की गई हैं कि लोगों की उत्पादकता बढ़ गई है और वे यहां रहने के लिए प्रेरित होते हैं। वहां के मास रैपिड ट्रांजिट सिस्टम ( रेल प्रणाली) से प्रतिदिन 30 लाख से अधिक लोग आवाजाही करते हैं। यह सब इसलिए हो रहा है, क्योंकि वहां बहुत पहले ही भीड़भाड़ से निपटने के लिए ठोस योजनाएं तैयार कर ली गई थीं।

इसी तरह वियतनाम के हो ची मिन्ह शहर ने भी अपनी बढ़ती आबादी के मुद्दों से निपटने के बेहतर इंतजाम किए हैं। यहां केंद्रित औद्योगिक क्षेत्र और रणनीतिक ढांचागत निवेश के कारण श्रम उत्पादकता हनोई शहर की तुलना में लगभग दोगुनी है। ये इस बात के जीते-जागते उदाहरण हैं कि कोई शहर अपनी आबादी से कैसे अधिक से अधिक आर्थिक लाभ हासिल कर सकता है।

आज अधिकांश भारतीय शहर पलायन के दौर से गुजर रहे हैं। यह इसलिए नहीं हो रहा कि वे सफलताओं की सीमाओं को पार कर चुके हैं, बल्कि इसलिए कि उन्होंने अभी तक अपने निवासियों एवं उद्योगों की बुनियादी जरूरतों से जुड़े वादे तक पूरे नहीं किए हैं। आबादी, नौकरियों और सेवाओं को एक जगह लाने से उत्पादकता एवं नवाचार को बढ़ाने तथा आर्थिक मौकों को भुनाने की उम्मीद थी लेकिन समन्वित रूप से ऐसा नहीं हो रहा है। नतीजतन कई शहरों की आबादी तो बढ़ी है, लेकिन उनकी गतिशीलता और उत्पादकता नहीं बढ़ी है। तरक्की के लिए एक अलग नजरिए की जरूरत होती है। भारतीय शहरों को अपने पुनर्संयोजन की प्रक्रिया अपनानी होगी। दीर्घावधि विकास को ध्यान में रखते हुए उन्हें नए सिरे से गुणवत्ता, लचीलेपन और समानता पर केंद्रित एवं बेहद सुविचारित योजनाएं लागू करनी होंगी।

---

Live हिन्दुस्तान .com

***Date: 24-07-25***

# अमानत में खयानत न करे कोई बैंकर

**अरुण कुमार, ( वरिष्ठ अर्थशास्त्री )**

आईसीआईसीआई बैंक की पूर्व प्रबंध निदेशक और सीईओ चंदा कोचर अपीलीय ट्रिब्यूनल में रिश्वत लेने की दोषी पाई गई हैं, जो बताता है कि बैंकिंग व्यवस्था में कालेधन ने किस कदर घुसपैठ कर ली है। कोचर पर आरोप है कि उन्होंने एक कारोबारी समूह को 300 करोड़ रुपये का ऋण जारी करने के बदले में उससे 64 करोड़ रुपये

रिश्वत में लिए। हालांकि, अभी इस मामले में लंबी न्यायिक प्रक्रिया बाकी है, लेकिन यदि कोचर को सजा मिलती है, तब भी यह नहीं कहा जा सकेगा कि इससे कालेधन पर कोई बड़ी चोट पड़ी है। ऐसा क्यों?

दरअसल, आजादी मिलने के बाद से करीब 30- 40 कमेटियों, आयोगों और संसदीय समितियों ने कालेधन पर अध्ययन किया है और उन सभी ने हजारों सुधार उपायों की सिफारिशें की हैं। उनकी सैकड़ों सिफारिशें लागू भी की गई हैं, जैसे- आयकर की दर घटाना, 1991 की तुलना में नियंत्रण में कुछ ढील देना, नियमों को कुछ उदार बनाना आदि। फिर भी, काली कमाई न सिर्फ बदस्तूर बनी हुई है, बल्कि बढ़ भी रही है, क्योंकि हमने व्यावहारिक उपायों की जगह तकनीकी कदमों पर जोर दिया है। साल 2012 में कई आंकड़ों का अध्ययन करके मैंने यह अनुमान लगाया था कि भारत में जितना कालाधन पैदा होता है, वह जीडीपी का लगभग 60 फीसदी है।

बीते 13 वर्षों में बेशक नोटबंदी जैसे कदम भी उठाए गए हैं, लेकिन इस अनुपात में शायद ही कोई बड़ा अंतर आया है, क्योंकि यदि काली कमाई कम हुई होती, तो प्रत्यक्ष कर और जीडीपी का अनुपात बढ़कर 14-15 प्रतिशत पर पहुंच चुका होता। जबकि, यह बीते दो दशक से 5.75 प्रतिशत से लेकर 6.5 प्रतिशत के बीच ही बना हुआ है।

बैंक किस तरह के कालाधन पैदा करते हैं, इसे चंदा कोचर के मामले से समझा जा सकता है। चंदा ने ऊंचे पदों पर रहते हुए निजी हित के लिए एक कारोबारी समूह को फायदा पहुंचाया। उन्होंने सीधे लाभ नहीं लिया, बल्कि इसके लिए अपने पति को माध्यम बनाया। ऊंचे पदों पर रहते हुए जब आप नियमों से इतर किसी व्यक्ति या समूह की मदद करते हैं, तो रिश्वत आमतौर पर इसी तरह 'कैश' (नकद) या 'काइंड' (कोई अन्य मदद) के रूप में मिलता है। बैंक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह किसी को तभी कर्ज देगा, जब कर्ज लेने वाले की हैसियत उसे चुकाने की होगी या उसकी बैलेंस शीट नियमानुसार दुरुस्त होगी। मगर चंदा कोचर पर आरोप है कि उन्होंने बैंक के हितों को नुकसान पहुंचाते हुए नियमों में फेरबदल कर कारोबारी समूह को कर्ज दिए ।

इस तरह की काली कमाई की एक बड़ी वजह यह भी है कि बैंकों के ऊंचे पदों पर राजनीतिक लाभ-हानि के अनुसार नियुक्ति की जाती है। वित्त मंत्रालय का बैंकिंग विभाग सरकारी बैंकों के ऊंचे पदों पर नियुक्ति करता है। इसी तरह, निजी क्षेत्र के बैंकों को भी राजनीतिक दबाव में काम करना पड़ता है। बैंकों में एनपीए, यानी डूब खाते के बढ़ने का यह भी कारण है। कई बार तो एक बैंक का कर्ज चुकाने के लिए दूसरे बैंक से कर्ज लिया जाता है और दूसरे का कर्ज चुकाने के लिए तीसरे बैंक से। इसमें भी राजनीतिक रसूख का फायदा कर्जदार उठाता है। इसीलिए, बार-बार यह मांग होती रही है कि तमाम बैंकों को मिलकर एक ऐसी व्यवस्था बनानी चाहिए, जिसमें वे आसानी से यह पता लगा सकें कि किसको, कितना कर्ज किस बैंक ने दिया है।

ऐसा नहीं है कि कर्ज देने के मामले में बैंकों की भेदभाव वाली नीति हाल-फिलहाल की है। 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण से पहले वे ( तब सभी बैंक निजी थे) अपने मालिक की कंपनी को ही अधिक कर्ज देते थे। राष्ट्रीयकरण के बाद भले ही आम लोगों को कर्ज मिलने में सहूलियत हुई, लेकिन आज भी हमारी बैंकिंग व्यवस्था

में इसको लेकर कोई स्पष्ट सोच नहीं है कि किसको कर्ज देना है, किसको नहीं या किससे रिकवरी करनी है और किससे नहीं? अब इसका चलन अधिक बढ़ता दिख रहा है, क्योंकि भारत में कालेधन की अर्थव्यवस्था काफी मजबूत हो गई है।

वास्तव में, काली कमाई के लिए एक गठजोड़ की जरूरत होती है और बैंकिंग या यूं कहें कि हमारी पूरी अर्थव्यवस्था में यह गठजोड़ बनाता है- कारोबारी समूह या उद्योगपति, राजनेता और 'एग्जिक्यूटिव', जिसमें पुलिस, नौकरशाही, न्यायपालिका सभी शामिल हैं। इस तिकड़ी को तोड़ना जरूरी है। उद्योगपतियों के लिए राजनेता नियमों से खिलवाड़ का दबाव डालते हैं और 'एग्जिक्यूटिव' इसको अमल में लाने में मदद करते हैं। इस तिकड़ी के कारण पूरी अर्थव्यवस्था प्रभावित हो रही है। हालांकि, कस्टम्स इंटेलिजेंस के प्रमुख रहे बीवी कुमार ने 1990 में अपनी किताब में इस तिकड़ी को चतुष्कोणीय कहा है। उनके मुताबिक, 1983 से अपराधियों की भी इसमें संलिप्तता बढ़ी है, जिसके कारण राजनीति का अपराधीकरण बढ़ा।

कालेधन को इसलिए भी नहीं रोका जा सका, क्योंकि उसके पैदा होने के मूल का पता लगाना कठिन होता है। अंतरराष्ट्रीय आर्थिक ढांचा इस उलझन को बढ़ाने का काम करता है। दरअसल, जब किसी मुल्क से कालाधन बाहर निकलता है, तो वह अलग-अलग 'टैक्स हेवन' देशों (जहां बहुत कम कर लगता है या नहीं लगता ) से गुजरते हुए सफेद रकम के रूप में वापस अपने मूल देश में लौट आता है। इसे यूं समझिए कि भारत से निकला कालाधन हवाई, सेंट किट्स, ब्रिटिश वर्जिन आइसलैंड और केमैन द्वीपसमूह की विभिन्न कंपनियों से होते हुए स्विट्जरलैंड पहुंच जाए। इसमें यह पता लगाना मुश्किल होता है कि कालाधन आखिर पैदा कहां हुआ ? बोफोर्स मामले में भी एक-दो जगह तक ही 'ट्रेस' (पता लगाना) किया जा सका।

दिक्कत यह भी है कि इस गठजोड़ को तोड़ने की कोई नीयत नहीं दिखती। साल 2016 में विनोद राय की अध्यक्षता में बैंक बोर्ड ब्यूरो का गठन किया गया था, ताकि सरकारी बैंकों की नियुक्तियों और प्रशासन में सुधार किए जा सकें। मगर बाद में बोर्ड के सदस्यों ने यह कहकर इस्तीफा दे दिया कि उनकी सिफारिशों पर अमल नहीं हो रहा। जाहिर है, सुधार की शुरुआत ऊपर से ही करनी होगी। और, इसके लिए किसी नए कानून की जरूरत भी नहीं है। मौजूदा व्यवस्था में ही पर्याप्त उपाय किए गए हैं। हां, इसके लिए ईमानदार प्रयास की दरकार है। जब तक सुधार संबंधी सिफारिशों को लागू करने वाले लोग ईमानदारी नहीं दिखाएंगे, तब तक कालेधन से हम रस्मी तौर पर ही लड़ते रहेंगे।